International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 01-01-2022, Accepted: 15-01-2022, Published: 31-01-2022
Volume 8, Issue 1, 2022, Page No. 57-60

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रः विलक्षण व्यक्तित्त्व पुनरावलोकन

डॉ. मीनाक्षी गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्री अरबिंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
हिन्दी साहित्य के पुर्नजागरण के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र है। उन्हें अपने पिता से साहित्यिक संस्कार विरासत में मिले। संस्कृत और ब्रजभाषा में अच्छी गति का प्रेरणास्त्रोत भी उन्होंने अपने पिता को माना है। भारतेन्दु का भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं था, वो सिर्फ हिन्दी भाषा की उन्नति के ही इच्छुक न थे अपितु चाहते थे कि सभी प्रादेशिक और प्रान्तीय, भाषाएँ स्वतन्त्र रूप से विकसित हो। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का हृदय अत्यन्त उदार था। दुःखी व परेशान व्यक्ति के कष्ट निवारणार्थ वे अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहते थे। धन हीन होने पर उन्हें सबसे ज्यादा अफसोस इसी बात का रहता था कि अब वे उस रूप में उनकी सहायता नहीं कर पा रहे हैं। वह हिन्दी के पहले सशक्त और सफल पत्रकार थे। भारतेन्दु ने हिन्दी की अपनी निबन्ध परम्परा को जन्म दिया। वह भाषा के प्रथम समर्थ नाटककार थे। 'नाटक' पर अपना विस्तृत निबन्ध लिखकर उन्होंने हिन्दी में तुलनात्मक और ऐतिहासिक समालोचना की नींव डाली। भारतेन्दुजी का जीवन और साहित्य परवर्ती साहित्यकारों व जनता के लिए अदम्य प्रेरणा का स्रोत बन गया।

मूल शब्दः राजस्थान, लोक कला, डिजिटल मीडिया, सांस्कृतिक पर्यटन, संरक्षण

प्रस्तावना
हिन्दी साहित्य के पुर्नजागरण के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर 1850 ई. को काशी में एक सुसंस्कृत तथा सम्पन्न घराने में हुआ। आपके पूर्वजों में सेठ अमीचन्द एक इतिहास प्रसिद्ध पुरूष रह चुके है। ये नवाब सिराजुद्दौला के समकालीन थे। भारत की उससमय की राजनीतिक उथल–पुथल में अमीचन्द का महत्त्वपूर्ण हाथ था। ये वास्तव में अंग्रेजों के पिट्ठू थे और बाद में उन्हीं के द्वारा विश्वासघात किए जाने के कारण ये पागल हो गए। उन्हीं की वंश–परंपरां में क्रमशः श्री फतेहचन्द, श्री हर्षचन्द व श्री गोपालचन्द्र हुए है। आपके पिता श्री गोपालचन्द्र अपने समय के प्रसिद्ध कवि रहे हैं। उन्होंने 'गिरधरदास' उपनाम से संस्कृत तथा ब्रजभाषा में अनेक रचनाएँ की है। 27 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने 40 के लगभग ग्रंथों की रचना की। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने पिता को विशुद्ध रीति से नाटक लिखने वाला प्रथम नाटककार माना है–

''यद्यपि नेवाज कवि का शकुन्तला नाटक, वेदान्त विषयक भाषा ग्रन्थ समयसार नाटक, ब्रजवासीदास प्रभृत्ति के प्रबोध चन्द्रोदय नाटक के भाषा अनुवाद नाटक नाम से अभिहित है किन्तु इन सबों की रचना काव्य की भाँति है अर्थात् नाटक रीत्यानुसार पात्र प्रवेश इत्यादि कुछ नहीं है। भाषा कवि कुल मुकुट माणिक्य देवकवि का 'देवमाया प्रपंच नाटक' और श्री महाराज काशिराज की आज्ञा से बना हुआ 'प्रभावती' नाटक तथा श्री महाराज विश्वनाथसिंह रीवां काश्आनन्द 'रघुनन्दनं' नाटक यद्यपि नाटक रीति से बने हैं किन्तु नाटकीय यावत नियमों का प्रतिपालन इनमें नहीं है और छन्द प्रधान ग्रंथ है। विशुद्ध नाटक रीति से पात्र प्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्य चरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द जी) का है।''

अपने पिता के साहित्यिक संस्कार भारतेन्दुजी को विरासत में मिले हैं। संस्कृत और ब्रजभाषा में अच्छी गति का प्रेरणास्त्रोत भी आपके पिता को माना जा सकता है। कहा जाता है कि पांच वर्ष की अल्पायु में अपने पिता की एक कविता में योग देकर आपने उन्हें चकित कर दिया था। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इस प्रसंग का उल्लेख इस रूप में किया हैं 'बलराम–कथामृत' की रचना करते समय जब उनके पिता बाणासुर–वध लिख रहे थे, तो बालक हरिश्चन्द्र ने भी कविता करने का आग्रह किया और उनमें प्रेमपूर्ण आज्ञा प्राप्त कर उन्होंने तुरन्त यह दोहा बनाया –

लै ब्योंड़ा ढाढ़े भए श्री अनिरूद्ध सुजान। वानासुर की सैन को हनन लगे भगवान।।''

इसी प्रकार एक बार अपने पिता की सभा में कवियों को अपने पितां कृत 'कच्छप कथामृत' के मंगलाचरण के इस अंश पर –

'करनं चहत जस चारू कछु कछुवा भगवान को।'

व्याख्या करते देख बालक हरिश्चन्द्र भी आ बैठे। किसी ने 'कछु कछु वा भगवान कोश, और किसी ने 'कछु कछुवा (कच्छप) भगवान को', इस प्रकार व्याख्या की। बालक हरिश्चन्द्र ने 'कछुक छुवा भगवान को' (अर्थात् उनके पिता जी ने जिस भगवान को कुछ–कुछ छू लिया) व्याख्या कर सबको आश्चर्य चकित कर दिया।[2]

पितृकुल के समान आपके मातामह तथा मातुल भी फारसी के बहुत बड़े विद्वान थे। अतः मातृ पक्ष के लोगों के संस्कारों का भी आप पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था आपका फारसी ज्ञान भी किसी से छिपा नहीं हैं। आपके पूर्वज कई पीढ़ियों से

बनारस में रहें है इसीलिए आपकी खड़ी बोली में पूर्वीपन दिखाई देता है। यह बात दूसरी है कि आपने उस प्रभाव को अपनी भाषा पर हावी नहीं होने दिया।

आप जब सिर्फ पांच वर्ष के थे तभी आपकी माता का और दस वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त हो गया। इतनी छोटी अवस्था में ही आपको संसार की विषय परिस्थितियों में से अपने अनुकूल मार्ग बनाना पड़ा। बाल्यावस्था में ही माता–पिता के स्नेह से वंचित होने के कारण आप सदैव स्नेह प्राप्त करने के लिए लालायित रहते थे। विमाता इस स्नेह की पूर्ति में असमर्थ रही। आपके जीवन का यही अभाव आपको अपना स्नेह लूटाने के लिए प्रेरित करता रहा। आपने अन्तिम समय तक अपने हृदय के स्नेह की एक–एक बूंद का दान देश, जाति तथा साहित्य के लिए किया। हिन्दी भाषा के विकास के लिए आप सदैव तत्पर रहे क्योंकि आपका विश्वास था शनिजी भाषा उन्नति अहैं सब उन्नति को मूल'।

आपकी स्कूल की शिक्षा बहुत व्यवस्थित न थी। पिता की मृत्यु से पहले आप घर पर ही पढ़ा करते थे। उस समय फारसी की शिक्षा आपने मौलवी ताज अली से तथा अंग्रेजी पं. नन्दकिशोर से प्राप्त की। आप काशी के प्रसिद्ध रईस राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के शिष्य भी रह चुके हैं और उनसे भी अंग्रेजी पढ़ने के लिए जाया करते हैं। राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द पहले सरल हिन्दी में ही रचनाएँ किया करते थे लेकिन बाद में अंग्रेजी राज्य में उर्दू की सुदृढ़ स्थिति तथा प्रभाव को देखकर उनका भाषा विषयक दृष्टिकोण परिवर्तित होता चला गया और वे भाषा में अरबी–फारसी मिश्रण के पूर्ण रूप से पक्षपाती हो गए। भारतेन्दु जी पर भी अपने गुरू का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। 'खुशी' जैसा निबन्ध इस बात का परिचायक है कि प्रारम्भ में आपने सितारे हिन्द की नीति का ही समर्थन किया लेकिन जैसे– जैसे आपकी भाषिक चेतना जाग्रत होती चली गई और आपने अनुभव किया कि भारतवर्ष का कल्याण अपनी भाषा के स्वरूप को विकसित करने से ही है आपका भाषा विषयक दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया और आपने हिन्दी के निजी स्वरूप को विकसित किया जो न तो संस्कृत के बोझ से दबी हुई थी और न अरबी–फारसी का आवरण लपेटे हुए थी।

आप कुछ समय के लिए बनारस के क्वींन्स कॉलेज में भी गए लेकिन कॉलेज की पढ़ाई अधिक समय तक नहीं चल सकी। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय बात तो यह है कि ज्ञान प्राप्त करने की आपकी अदम्य लालसा कॉलेज न जाने से अवरूद्ध नहीं हुई अपितु बढ़ती चली गयी। आपने संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी आदि देशी–विदेशी भाषाओं के विपुल साहित्य का गहन अध्ययन किया। रामविलास शर्मा जी ने इस सम्बन्ध में लिखा हैः–

''भारतेन्दुने अनेक भाषाएँ सीखी थी। संस्कृत, बंगला, फारसी, अंग्रेजी आदि में उनकी जैसी समान गति थी, वैसी लम्बी उम्र पाने वाले हिन्दी साहित्यिकों में भी कम की ही रही है। उनकी कविताएँ या नाटक पढ़कर अचानक पता नहीं चलता कि इनका रचयिता कैसा पढ़ाकू है। भारतेन्दु का अध्ययन उनकी कला के नीचे वैसे ही छिपा है जैसे तुलसीदास, प्रेमचन्द या गोर्की का विशाल अध्ययन छिपा है।''[3]

भारतेन्दुजी का भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं था आप सिर्फ हिन्दी भाषा की उन्नति के ही इच्छुक न थे अपितु चाहते थे कि सभी प्रादेशिक और प्रान्तीय, भाषाएँ स्वतन्त्र रूप से विकसित हो। बलिया यात्रा के दौरान आपने 'भारतवर्ष का सुधार कैसे होगा' शीर्षक से जो व्याख्यान दिया था उसकी भाषा वहाँ के जनसाधारण के नितान्त अनुकूल थी। इससे भी आपकी भाषा सम्बन्धी उदारता का परिचय मिलता हैं। आप भाषा के स्थान पर देश के विकास और उन्नत रूप के कामी थे इसलिए आप कहते थे कि इस समय देश को जाग्रत करने की आवश्यकता है और सभी प्रान्तों की भाषाओं को इस जनजागरण में सहयोग देना चाहिए।

आपका विवाह 13 वर्ष की अल्पावस्था में ही हो गया था। आपकी पत्नी का नाम मन्नादेवी था। यह एक कटु सत्य है कि आप अपनी पत्नी से प्यार नहीं करते थे बाकि किसी अन्य स्त्री के प्रति अनुरक्त भी हो गए थे। रामविलास शर्मा जी ने इस सम्बन्ध में लिखा हैं– ''माधवी और मल्लिका से उन्हें आजीवन स्नेह रहा और इसे छिपाना तो कू, उन्होंने उनके बनाये पदों को अपने संग्रहों में जगह दी।''[4]

इस सम्बन्ध में डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के विचारों को भी देख लेना असंगत न होना– ''इसी सम्बन्ध में माधवी और मल्लिका को लेकर उनके चरित्र पर तरह–तरह के लांछन लगाने की चेष्टा की गई। इसमें कोई संदेह नहीं वे विलासी थे। किन्तु एक कवि का सौन्दर्योपासक होना स्वाभाविक ही है। दूसरे, माधवी और मल्लिका के साथ उनका सम्बन्ध दया एवं सहानुभूति और साहित्यानुराग में परिणत हो गया था। वे उन्हें आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर बनाकर नारीत्व के प्रति अपने सम्मान की भावना प्रकट करना चाहते थे।... श्री ब्रजरत्नदास ने 'चन्द्र में कलंक शीर्षक से माधवी और मल्लिका का जो विवरण दिया है उसमें भारतेन्दु का व्यक्तित्व और भी निखर उठता है। ''5 अस्तु स्पष्ट हैं

कि उनके इस व्यवहार के कारण ही उनका पारिवारिक जीवन पूर्णतः सुखी न रहा। आपके दो पुत्र तथा एक पुत्री उत्पन्न हुए। पुत्र जीवित न रहे। पुत्री का वंश चल रहा है। भारतेन्दु के प्रगतिशील महान् व्यक्तित्व का परिचय इस बात से भी मिलता है कि कन्या शिक्षा का अधिक प्रचलन न होने पर भी आपने उस समय में अपनी पुत्री की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया था। पुत्री के वंशजों में बाबू ब्रजरत्नदास का नाम विशिष्ट रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इन्होंने आपकी साहित्यिक परम्परा के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

भारतेन्दु जी को अपने पूर्वजों द्वारा जनता का शोषण करके कमाया गया पर्याप्त धन विरासत में मिला था। लेकिन उनके पूरे जीवन–काल में हमें कहीं भी उस धन के प्रति उनकी आसक्ति का भाव नहीं मिलता है अपितु उपेक्षा ही मिलती है। यही कारण है कि दीन–दुखियों की निश्छल भाव से सेवा करने, साहित्यकारों को बढ़ावा देने के लिए उनकी आर्थिक सहायता करने, पुस्तकें तथा पत्र–

पत्रिकाएं आदि छापने के लिए उन्होंने अपना धन खुले मन से लुटाया था। यहीं कारण हैं कि वे शीघ्र कर्जदार हो गए और कर्जदार के रूप में उन्हें जो कटु अनुभव हुए उसकी अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हम उनके नाटक 'संत्य हरिश्चन्द्र के मुख्य पात्र राजा हरिश्चन्द्र के रूप में पाते हैं– ''हा! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है,

इस लोक में वही कृतार्थ है जिसने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल आंखें नहीं देखी है।''

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का हृदय अत्यन्त उदार था। दुःखी व परेशान व्यक्ति के कष्ट निवारणार्थ वे अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहते थे। धन हीन होने पर उन्हें सबसे ज्यादा अफसोस इसी बात का रहता था कि अब वे उस रूप में उनकी सहायता नहीं कर पा रहे हैं। उनकी यही पीड़ा मानो 'सती प्रताप' नाटक के राजा द्युमत्सेन के शब्दों में व्यस्त हो गई हैं– ''मुझको अपनी निर्धनता केवल उस समय अति गढ़ाती है जब किसी सत्पुरूष कुलीन को द्रव्य के अभाव में दुःखी देखता हूँ। उस समय मुझको निस्संदेह यह हाय होता है कि आज द्रव्य होता तो मैं उसकी सहायता करता।''

निस्संदेह भारतेन्दुजी का हृदय दया व करूणा की भावना से ओत प्रोत था। धन की इस कमी के कारण उनकी कुछ इच्छाएँ अपूर्ण रह गई थी जिनका उल्लेख रामचन्द्र मिश्र ने अपनी पुस्तक 'भारतेन्दु साहित्य ' की 'अपनी बात' शीर्षक प्रस्तावना में किया हैः– ''अभी तक मेरे पास पूर्ववत् बहुत धन होता तो मैं चार काम करता। (1) श्री ठाकुर जी को बगीचे में पधरा कर धूम–धाम से षट् ऋतु का मनोरथ करता, (2) विलायत, फरासीस और अमेरिका जाता, (3) अपने उद्योग से शुद्ध हिन्दी की, युनिवर्सिटी स्थापन करता, (4) एक शिल्पकला का पश्चिमोत्तर देश में कॉलेज करता।''[8]

प्रथम अपूर्ण इच्छा से स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु जी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। आप पुष्टिमार्गीय कृष्ण भक्त थे। 'चन्द्रावती' नाटिका के माध्यम से आपने स्वयं अपने आराध्य के प्रति अपना समर्पण किया हैं। वैष्णव धर्म और ईश्वरभक्ति के प्रचारार्थ ही आपने 'तटीय समाज' नामक संस्था स्थापित की थी। उस समय दयानन्द सरस्वती ने ईसाई धर्म के प्रचार की प्रतिक्रिया स्वरूप वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की और तद्नुसार प्रतिमा पूजन का विरोध किया। भारतेन्दुहरिश्चन्द्र जी भी धार्मिक विषयों पर बोलते तथा लिखते रहते थे। प्रतिमा पूजन के विरोध में दिए गए दयानन्द सरस्वती के तर्कों का खण्डन करने के लिए आपने 'दूषण मालिका' लिखी। धार्मिक विषयों से सम्बन्धित ग्रंथों में आपकी शैली पर पण्डिताऊपन की झलक स्पष्ट रूप से दिखती है।

द्वितीय अपूर्ण इच्छा उनके घूमने–फिरने के शौक की परिचायक हैं। अपने जीवन काल में उन्होंने विभिन्न स्थलों की यात्राएं की। पन्द्रह वर्ष की अल्पावस्था में ही उन्होंने अपनी प्रथम यात्रा सपरिवार जगन्नाथपुरी की की। उनके द्वारा किए गए विभिन्न यात्रा स्थलों का संकेत श्री रामविलास शर्मा जी ने इस प्रकार दिया है ''अगले साल उन्होंने बुलन्दशहर की यात्रा की। इस तरह सोलह साल की उम्र में ही उन्होंने हिन्दी भाषा प्रदेश या हिन्द प्रदेश के पूर्वी और पश्चिमी भागों को देख लिया था। बीस साल की अवस्था में उन्होंने कानपुर, लखनऊ, सहारनपुर, मसूरी, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, आगरा आदि स्थानों की यात्रा की जिससे तैंतीस दिन लगे। छः साल बाद वह अजमेर गए और इसके दो साल बाद अयोध्या आए। अयोध्या से उन्होंने बस्ती और गोरखपुर का भ्रमण किया, जहाँ हिन्द प्रदेश के बहुत ही पिछड़े हुए भाग उन्हें देखने को मिले। अगले साल उन्होंने वैद्यनाथ की यात्रा की और तीस साल की उम्र में उदयपुर गये। सन् 1884 में उन्हें व्याख्यान देने बलिया बुलाया गया। इसके सिवा उन्होंने कलकत्ता की यात्रा भी की थी।''[9]

इन यात्रा–प्रसंगों का महत्त्व सिर्फ उनके घूमने फिरने के शौक की पूर्ति मात्र न था अपितु उनके ज्ञान–पिपासु व्यक्तित्त्व को संतुष्ट करने, मनुष्य को उसके सम्पूर्ण परिपार्श्व में देखने, देश में व्याप्त अशिक्षा, कुसंस्कार तथा पुरानी रूढ़ियों को तोड़ने आदि की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण रहा। यात्रा से प्राप्त विशिष्ट अनुभवों को आपने अपने साहित्य में स्थान–स्थान पर अभिव्यक्ति दी है। इन यात्राओं के कारण आपका शब्द भंडार पर्याप्त समृद्ध हो गया है। कलकत्ता की यात्रा के दौरान आप बंग देश की साहित्यिक प्रगति से अवगत हुए और उसी से प्रभावित होकर आपने बंग भाषा से विविध अनुवाद हिन्दी में किए है। 'विद्यासुन्दर' नामक नाटक का बंगला भाषा से हिन्दी में अनुवाद करके आपने हिन्दी विद्वानों के समक्ष एक नई दिशा का सूत्रपात किया। इस नाटक में गद्य का बहुत ही सुडौल व परिष्कृत रूप दिखाई देता है। स्पष्ट हैं कि आपके भारत भ्रमण की इच्छा पूर्ण न हो सकी। अगर आपकी यह इच्छा पूर्ण हो जाती तो संभवतः आप भारतीयों के समकक्ष कुछ नया और उपयोगी लाने में अवश्य सफल होते।

तीसरी अपूर्ण इच्छा उनके अनन्य हिन्दी प्रेम को द्योतित करती है। वस्तुतः उनका समूचा जीवन हिन्दी के विकास के लिए समर्पित था। आपने हिन्दी का जन प्रचलित रूप लोगों के समक्ष रखा जिसमें न संस्कृत के तत्सम शब्दों का आधिन्य था और न ही अरबी–फारसी के अप्रचलित शब्द– प्रयोग का दुराग्रह है। खड़ी बोली के रूप निर्धारण में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख डॉ. रामचन्द्र शुक्ल जी ने इस प्रकार किया है– ''उन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया, उसी प्रकार हिन्दी साहित्य को भी नए मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। उनके भाषा संस्कार की महत्ता को सभी लोगों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया मुंशी सदासुख की भाषा साधु होते हुए भी पंडिताऊपन लिए थी लल्लूलाल मैं ब्रजभाषापन औरं सदलमिश्र में पूरबीपन था। राजा लक्ष्मणसिंह की भाषा विशुद्ध और मधुर तो अवश्य थी पर आगरे की बोलचाल का पुट उसमें कम न था। भाषा का निखरा हुआ शिष्ट सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ।'' 10 स्पष्ट है कि भारतेन्दु जी ने अनिश्चिता के कर्दम में फंसी खड़ी बोली को निकालकर उसे उसका सही रूप प्रदान किया।

चौथी अपूर्ण इच्छा से उनके विशाल दृष्टिकोण का परिचय मिलता है वे महान भारतीय शिल्प कला से दूसरे देशों को भी परिचित करवाना चाहते थे। भारतेन्दु जी जानते थे कि भारत का अतीत अत्यन्त गौरवमय था तथा आज पराधीन भारत के निवासी उस गौरवमय संस्कृति को भूल चुके है इसलिए उस अतीत गौरवमय भारत का आह्वान आपके 'भारत दुर्दशा', 'भारत जननी' 'नीलदेवी' जैसे नाटकों में स्थान स्थान पर दिखाई देता है उसी गौरवमय भारत की झलक वे पश्चिम में शिल्पकला के कॉलेज के माध्यम से दिखाना चाहते थे। भारतेन्दुजी के व्यक्तित्त्व की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता उनका विनोद प्रिय होना भी है। उनके व्यक्तित्त्व की यह विशेषता अनके स्थलों पर अनायास ही उजागर हो जाती हैं। प्रथम अप्रैल के दिन वे बड़ी ही योजनाबद्ध तरीके से अंग्रेजों के इस परिहास–दिवस को मनाते थे। एक बार उन्होंने अपने एक मित्र के नाम से यह घोषणा की कि 'एक मेम रामनगर के सामने खड़ाऊँ पहनकर गंगा पार करेंगीं।' इस कौतुक को देखने के लिए नदी के किनारे अपार जन–पारावार इकट्ठा हो गया लेकिन सन्ध्या होने पर भी लोगों को जब यह कौतुक देखने को नहीं मिला तब उनकी समझ में आया कि आज प्रथम अप्रैल के दिन उन्हें बेवकूफ बनाया गया है। भारतेन्दु जी के हास्य–व्यंग्य का भाव बड़ा ही शिष्ट होता था। किसी को व्यक्तिगत रूप से उपहास का पात्र बनाना उनके व्यक्तित्व में शामिल नहीं था। अपितु समाज में व्याप्त धार्मिक आडम्बर, पाखण्ड व कुरीतियों आदि को देखकर

उनके विकृत स्वरूप को हास्य–व्यंग्यात्मक रूप में पेश करने से चूकते नहीं थे ताकि जनता जागरूक होकर उनके निवारणार्थ पूर्ण कटिबद्ध हो जाए। अंधेर नगरीं आपका सशक्त व्यंग्यात्मक नाटक है जिसमें दूषित समाज–व्यवस्था पर व्यंग्य कसा गया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के व्यक्तित्व की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि उन्होंने सिर्फ नाटकों की सर्जना ही नहीं की है अपितु वे कुशल अभिनय में भी दक्ष । 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'नीलदेवी' नामक नाटकों में क्रमशः उनका हरिश्चन्द्र और पागल की भूमिका को सशक्त ढंग से अभिनीत करना उनके व्यक्तित्व के इस महान् गुण का निर्देशक हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का समूचा जीवन साहित्यिक संवर्द्धन के हेतु समर्पित था। लोगों में शिक्षा के प्रति खंचि जाग्रत करने के लिए उन्होंने कितनी ही पुस्तकें प्रकाशित करके लोगों में मुक्त बँटवा दी। पुरस्कार आदि देकर वे लेखकों को साहित्य सृजन के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। उन्होंने घाटा उठाकर भी न जाने कितनी पत्र–पत्रिकाएँ निकालीं। 'कवि वचन सुधा नामक पत्र आपने 1868 में प्रकाशित किया जिसमें साहित्यिक, सामाजिक, इतिहास, ज्ञान–विज्ञान आदि नाना विषयों पर लेखादि लिखकर पत्र कला का विकास करने में अभूतपूर्व योगदान दिया। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (1873) भी उसी दिशा में किया गया सफल प्रयास था। 1874 में आपने स्त्रियों के उपकारार्थ 'बाल बोधिनी' नामक प्रसिद्ध पत्र भी प्रकाशित किया। हिन्दी साहित्य की उन्नति और नवीन भावों व विचारों के सम्प्रेषणार्थ इन पत्रों का महत्त्वपूर्ण योगदान किसी से छिपा नहीं है।

इसके अलावा 'काशी–पत्रिका', 'मित्र–विलास', 'भारत–मित्र', 'आनन्द कादम्बिनी', 'हिन्दी प्रदीप', 'ब्राह्मण' आदि दूसरे पत्रों में भी समय–समय पर अपने लेख छपवाकर उन्हें प्रेरणा व प्रोत्साहन देने का सराहनीय कार्य भारतेंन्दु जी करते रहे। लेखकों में चिंतन और लेखक की नवीन प्रवृत्तियाँ विकसित करने के विचार से ही आपने 'कविता वर्द्धिनी सभा', 'पैनी रीडिंग क्लब', 'डिबेटिंग क्लब आदि खोले। 'कवितावर्द्धिनी सभा में ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि जैसे दीनदयाल गिरि, सरदार, सेवक, नारायण, द्विज कवि (मन्नालाल) आदि उपस्थित होते थे। भारतेन्दुजी का व्यक्तित्त्व अत्यन्त मिलनसार था। उनके मित्रों की श्रेणी में डॉ. राजेन्द्रलाल मिश्र, ईश्वरचन्द विद्यासागर, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी प्रभृत्ति भारतीय विद्वान ही नहीं थे अपितु शेरिंग, हार्नली, कर्नल अलकॉट, ऐनी बिसेंट जैसे विदेशी विद्वानों के संपर्क में भी आप आ चुके थे। अंग्रेज मित्र फ्रेडरिक पिकांट से तो आपका पत्रव्यवहार होता रहता था। इन सभी विद्वानों के संसर्ग के फलस्वरूप आपकी भाषा पर बंगला और अंग्रेजी का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

साहित्य सेवी, समाज–सुधारक होने के साथ–साथ भारतेन्दु जी एक सच्चे देशभक्त भी

थे। कुछ लोगों के अनुसार उनकी राजभक्ति उन्हें सच्चा देशभक्त सिद्ध करने में बाधक है। लेकिन ऐसा नहीं है उनकी राजभक्ति देशभक्ति की ही अनुगामिनी है। उदाहरणार्थ– ''अँग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी। पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।। ''[11]

जैसी पंक्तियाँ देश और समाज की परिस्थितियों के प्रति सच्चा जागरूक व राष्ट्रभक्त ही लिख सकता था। 'विषस्य विषमौषधम'', ''भारत दुर्दशा', 'अंधेरनगरी' जैसे नाटकों में अंग्रेजी शासन पर प्रखर व्यंग्य–बाण कसने में वे चूके नहीं हैं।

भारतेन्दु जी का मूल नाम बाबू 'हरिश्चन्द्र' था हरिश्चन्द्र नाम से पूर्व 'भारतेन्दु' विशेषण जोड़ने के सम्बन्ध में डॉ. भानुदेव शुक्ल की निम्न पंक्तियाँ अवलोकननीय है– ''पण्डित रघुनाथ ने एक बार रूष्ट होकर इनको भारतेन्दु–पुकारने का निश्चय किया क्योंकि इनमें विशिष्ट गुणों के साथ अवगुण भी थे। द्वितीया के चन्द्र के समान पुण्य–दर्शन इन्दु के रूप में मानते सुधाकर द्विवेदी ने इस नाम को स्वीकार किया और हरिश्चन्द्र के साथ 'भारतेन्दु' जोड़ने का प्रबल आग्रह किया। राजा शिवप्रसाद को सरकारी कृपा से 'सितारे हिन्द' का खिताब मिल चुका था। राजा साहब की भाषा नीति से विरोध करने वालों ने 'भारतेन्दु' उपाधि द्वारा 'सितारे हिन्द' से अधिक सम्मानप्रद स्थान देकर बाबू हरिश्चन्द्र का ही नहीं वरन् उनकी साहित्यिक सेवाओं तथा भाषा नीति का सम्मान किया। 27 सितम्बर 1880 ई. को 'सार सुधानिधिं' में पं. रामेश्वर दत्त व्यास ने लेख में प्रस्ताव रखा और उसका समर्थन करते हुए सम्पूर्ण साहित्यिक जगत में 'भारतेन्दु' के नाम से बाबू जी को पुकारना प्रारम्भ किया। कालान्तर में 'हरिश्चन्द्र' से 'भारतेन्दु' अधिक लोकप्रिय हुआ और साहित्य में यह नाम अमर हो गया।''[12]

निष्कर्ष

हिन्दी भाषा, समाज, साहित्य आदि विभिन्न क्षेत्रों में क्रान्ति का सूत्रपात करने वाले महान् साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का निधन 6 जनवरी 1885 ई. को हो गया उस समय उनकी आयु सिर्फ 34 वर्ष व 4 महीने की थी। इतने कम समय में उन्होंने साहित्य का अपूर्व भंडार सृजित किया। जिसमें काव्य भी है, इतिहास–ग्रंथ भी है, धर्म–ग्रंथ भी है, निबन्ध व लेख भी है, नाटक भी है, यात्रा– विवरण भी है आदि अर्थात् साहित्य–सृजन का कोई भी क्षेत्र उनकी लेखनी से अछूता नहीं रहा है। उनके साहित्यिक व भाषायी महत्त्व का आंकलन करते हुए श्री रामविलास शर्मा जी ने लिखा है– ''भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी गद्य के जन्मदाता थे। वह हिन्दी के पहले सशक्त और सफल पत्रकार थे। भारतेन्दु ने हिन्दी की अपनी निबन्ध परम्परा को जन्म दिया। वह भाषा के प्रथम समर्थ नाटककार थे।

उन्होंने खड़ी बोली में पच्चीसों सफल कविताएँ करके हिन्दी पद्य में खड़ी बोली के व्यवहार के लिए मार्ग प्रशस्त किया। 'नाटक' पर अपना विस्तृत निबन्ध लिखकर उन्होंने हिन्दी में तुलनात्मक और ऐतिहासिक समालोचना की नींव डाली।''[13] समग्रतः भारतेन्दु जी का जीवन और साहित्य परवर्ती साहित्यकारों व जनता के लिए अदम्य प्रेरणा का स्रोत बन गया।.

संदर्भ सूची

1. नाटक अथवा दृश्य काव्य (लेख), भारतेंदु हरिश्चंद, पृष्ठ – 787–788
2. पृष्ठ–21–22, भारतेंदु हरिश्चंद्र
3. पृष्ठ –15, भारतेंदु हरिश्चंद्र
4. पृष्ठ –4, भारतेंदु हरिश्चंद्र
5. पृष्ठ –24, भारतेंदु हरिश्चंद्र
6. पृष्ठ –277, सत्य हरिश्चंद्र
7. पृष्ठ –244, सती प्रताप
8. पृष्ठ –8, भारतेंदु हरिश्चंद्र
9. पृष्ठ –7, भारतेंदु हरिश्चंद्र
10. पृष्ठ–429, हिंदी साहित्य का इतिहास 10
11. पृष्ठ–134, भारत दुर्दशा – भारतेंदु हरिश्चंद्र
12. पृष्ठ –23, भारतेंदु के नाटक
13. पृष्ठ –15, भारतेंदु हरिश्चंद्र